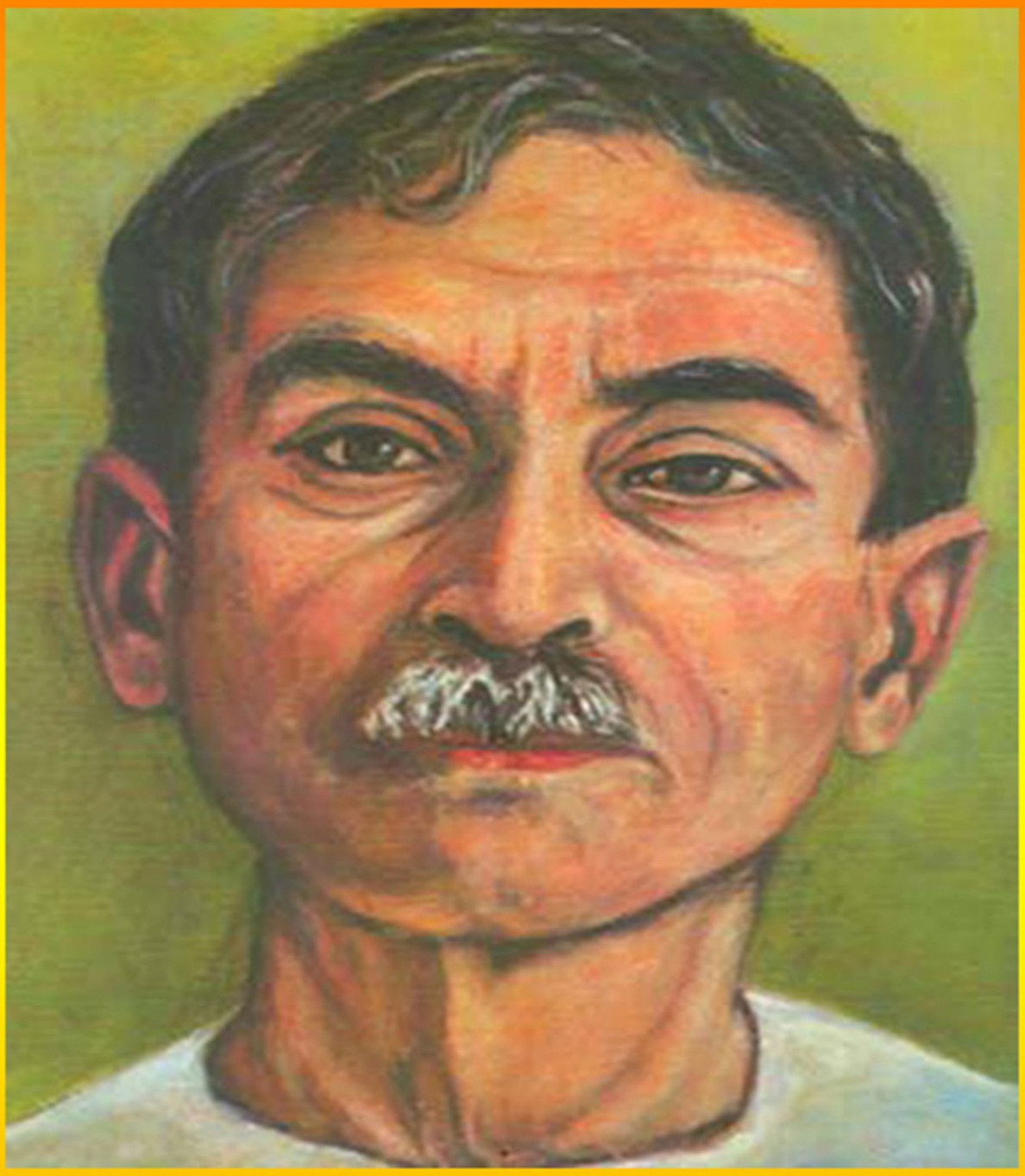

PREMCHAND

HOLI KA UPHAR

होली का उपहार

प्रेमचंद

साँई ईपब्लिकेशंस

सर्वाधिकार सुरक्षित। यह पुस्तक या इसका कोई भी भाग लेखक या प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इलैक्ट्रॉनिक या यान्त्रिक (जिसमे फोटोकॉपी रिकार्डिंग भी सम्मिलित है) विधि से या सूचना संग्रह तथा पुनः प्राप्ति-पद्धति (रिट्रिवल) द्वारा किसी भी रूप में पुनः प्रकाशित अनूदित या संचारित नहीं किया जा सकता।

— प्रकाशक

होली का उपहार

प्रेमचन्द

© साँई ईपब्लिकेशंस

प्रकाशक: साँई ईपब्लिकेशंस

All rights reserved. No part of this material may be reproduced or transmitted in any form, or by any means electronic or mechanical, including photocopy, recording, or by any information storage and retrieval system without the written permission of the publisher, except for inclusion of brief quotations in a review.

— Publisher

Holi Ka Uphar

By Premchand

© Sai ePublications

Published by: Sai ePublications

Digital edition produced by Sai ePublications

अनुक्रमणिका

शीर्षक पृष्ठ

सर्वाधिकार और अनुमतियाँ

होली का उपहार

लेखक परिचय

१

मैकूलाल अमरकान्त के घर शतरंज खेलने आये, तो देखा, वह कहीं बाहर जाने की तैयारी कर रहे हैं। पूछा-कहीं बाहर की तैयारी कर रहे हो क्या भाई? फुरसत हो, तो आओ, आज दो-चार बाजियाँ हो जाएँ।

अमरकान्त ने सन्दूक में आईना-कंघी रखते हुए कहा-नहीं भाई, आज तो बिलकुल फुरसत नहीं है। कल जरा ससुराल जा रहा हूँ। सामान-आमान ठीक कर रहा हूँ।

मैकू-तो आज ही से क्या तैयारी करने लगे? चार कदम तो हैं। शायद पहली बार जा रहे हो?

'अमर-हाँ यार, अभी एक बार भी नहीं गया। मेरी इच्छा तो अभी जाने को न थी; पर ससुरजी आग्रह कर रहे हैं।

मैकू-तो कल शाम को उठना और चल देना। आध घण्टे में तो पहुँच जाओगे।

अमर-मेरे हृदय में तो अभी से जाने कैसी धडक़न हो रही है। अभी तक तो कल्पना में पत्नी-मिलन का आनन्द लेता था। अब वह कल्पना प्रत्यक्ष हुई जाती है। कल्पना सुन्दर होती है, प्रत्यक्ष क्या होगा, कौन जाने।

मैकू-तो कोई सौगात ले ली है? खाली हाथ न जाना, नहीं मुँह ही सीधा न होगा। अमरकान्त ने कोई सौगात न लिया था। इस कला में अभी अभ्यस्त न हुए थे।

मैकू बोला-तो अब ले लो, भले आदमी! पहली बार जा रहे हो, भला वह दिल में क्या कहेंगी?

अमर-तो क्या चीज ले जाऊँ? मुझे तो इसका ख्याल ही नहीं आया। कोई ऐसी चीज़ बताओ, जो कम खर्च और बालानशीन हो; क्योंकि घर भी रुपये भेजने हैं, दादा ने रुपये माँगे हैं।

मैकू माँ-बाप से अलग रहता था। व्यंग्य करके बोला-जब दादा ने रुपये माँगे हैं, तो भला कैसे टाल सकते हो! दादा का रुपये माँगना कोई मामूली बात तो है नहीं?

अमरकान्त ने व्यंग्य न समझकर कहा-हाँ इसी वजह से तो मैंने होली के लिए कपड़े भी नहीं बनवाये। मगर जब कोई सौगात ले जाना भी जरूरी है, तो कुछ-न-कुछ लेना ही पड़ेगा। हलके दामों की कोई चीज़ बतलाओ।

दोनों मित्रों में विचार-विनिमय होने लगा। विषय बड़े ही महत्व का था। उसी आधार पर भावी दाम्पत्य-जीवन सुखमय या इसके प्रतिकूल हो सकता था। पहले दिन बिल्ली को मारना अगर जीवन पर स्थायी प्रभाव डाल सकता है, तो पहला उपहार क्या कम महत्व का विषय है? देर तक बहस होती रही; पर कोई निश्चय न हो सका।

उसी वक्त एक पारसी महिला एक नये फैशन की साड़ी पहने हुए मोटर पर निकल गयी। मैकूलाल ने कहा-अगर ऐसी एक साड़ी ले लो तो वह जरूर खुश हो जाएँ। कितना सूफियाना रंग है। और वज़ा कितनी निराली! मेरी आँखों में तो जैसे बस गयी। हाशिम की दूकान से ले लो। २५) में आ जाएगी।

अमरकान्त भी उस साड़ी पर मुग्ध हो रहा था। वधू यह साड़ी देखकर कितनी प्रसन्न होगी और उसके गोरे रंग यह पर कितनी खिलेगी, वह इसी कल्पना में मग्न था। बोला-हाँ यार, पसन्द तो मुझे भी है; लेकिन हाशिम की दूकान पर तो पिकेटिंग हो रही है।

‘तो होने दो। खरीदने वाले खरीदते ही हैं, अपनी इच्छा है, जो चीज चाहते हैं, खरीदते हैं, किसी के बाबा का साझा है।’

अमरकान्त ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा-यह तो सत्य है; लेकिन मेरे लिए स्वयंसेवकों के बीच से दूकान में जाना सम्भव नहीं है। फिर तमाशाइयों की हरदम भीड़ भी तो लगी रहती है।

मैकू ने मानों उसकी कायरता पर दया करके कहा-तो पीछे के द्वार से चले जाना। वहाँ पिकेटिंग नहीं होती।

‘किसी देशी दूकान पर न मिल जाएगी?’

‘हाशिम की दूकान के सिवा और कहीं न मिलेगी।’

२

सन्ध्या हो गयी थी। अमीनाबाद में आकर्षण का उदय हो गया था। सूर्य की प्रतिभा विद्युत-प्रकाश के बुलबुलों में अपनी स्मृति छोड़ गयी थी।

अमरकान्त दबे पाँव हाशिम की दूकान के सामने पहुँचा। स्वयंसेवकों का धरना भी था और तमाशाइयों की भीड़ भी। उसने दो-तीन बार अन्दर जाने के लिए कलेजा मजबूत किया, पर फुटपाथ तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

मगर साड़ी लेना जरूरी था। वह उसकी आँखों में खुब गयी थी। वह उसके लिए पागल हो रहा था।

आखिर उसने पिछवाड़े के द्वार से जाने का निश्चय किया। जाकर देखा,

अभी तक वहाँ कोई वालण्टियर न था। जल्दी से एक सपाटे में भीतर चला गया और बीस-पचीस मिनट में उसी नमूने की एक साड़ी लेकर फिर उसी द्वार पर आया; पर इतनी ही देर में परिस्थिति बदल चुकी थी। तीन स्वयंसेवक आ पहुँचे थे। अमरकान्त एक मिनट तक द्वार पर दुविधे में खड़ा रहा। फिर तीर की तरह निकल भागा और अन्धाधुन्ध भागता चला गया। दुर्भाग्य की बात! एक बुढिय़ा लाठी टेकती हुई चली आ रही थी। अमरकान्त उससे टकरा गया। बुढिय़ा गिर पड़ी और लगी गालियाँ देने-आँखों में चर्बी छा गयी है क्या? देखकर नहीं चलते? यह जवानी ढै जाएगी एक दिन।

अमरकान्त के पाँव आगे न जा सके। बुढिय़ा को उठाया और उससे क्षमा माँग रहे थे कि तीनों स्वयंसेवकों ने पीछे से आकर उन्हें घेर लिया। एक स्वयंसेवक ने साड़ी के पैकेट पर हाथ रखते हुए कहा-बिल्लाती कपड़ा ले जाए का हुक्म नहीं ना। बुलाइत है, तो सुनत नाहीं हौ।

दूसरा बोला-आप तो ऐसे भागे, जैसे कोई चोर भागे?

तीसरा-हज्जारन मनई पकर-पकरि के जेहल में भरा जात अहैं, देश में आग लगी है, और इनका मन बिल्लाती माल से नहीं भरा।

अमरकान्त ने पैकेट को दोनों हाथों से मजबूत करके कहा-तुम लोग मुझे जाने दोगे या नहीं।

पहले स्वयंसेवक ने पैकेट पर हाथ बढ़ाते हुए कहा-जाए कसन देई। बिल्लाती कपड़ा लेके तुम यहाँ से कबौं नाहीं जाय सकत हौ।

अमरकान्त ने पैकेट को एक झटके से छुड़ाकर कहा-तुम मुझे हर्गिज नहीं रोक सकते।

उन्होंने कदम आगे बढ़ाया, मगर दो स्वयंसेवक तुरन्त उसके सामने लेट गये। अब बेचारे बड़ी मुश्किल में फँसे। जिस विपत्ति से बचना चाहते थे, वह जबरदस्ती गले पड़ गयी। एक मिनट में बीसों आदमी जमा हो गये। चारों तरफ से उन टिप्पणियाँ होने लगीं।

'कोई जण्टुलमैन मालूम होते हैं।'

'यह लोग अपने को शिक्षित कहते हैं। छि:! इस दूकान पर से रोज दस-पाँच आदमी गिरफ्तार होते हैं; पर आपको इसकी क्या परवाह!'

'कपड़ा छीन लो और कह दो, जाकर पुलिस में रपट करें।'

'बेचारे बेडिय़ाँ-सी पहने खड़े थे। कैसे गला छूटे, इसका कोई उपाय न सूझता था। मैकूलाल पर क्रोध आ रहा था कि उसी ने यह रोग उनके सिर मढ़ा। उन्हें तो किसी सौग़ात की फिक्र न थी। आये वहाँ से कि कोई सौग़ात ले लो।

कुछ देर तक लोग टिप्पणियाँ ही करते रहे, फिर छीन-झपट शुरू हुई। किसी ने सिर से टोपी उड़ा दी। उसकी तरफ लपके, तो एक ने साड़ी का पैकेट हाथ से छीन लिया। फिर वह हाथों-हाथ गायब हो गयी।

अमरकान्त ने बिगडक़र कहा-मैं पुलिस में रिपोर्ट करता हूँ।

एक आदमी ने कहा-हाँ-हाँ, जरूर जाओ और हम सभी को फाँसी चढ़वा दो!

सहसा एक युवती खद्दर की साड़ी पहने, एक थैला लिए आ निकली। यहाँ यह हुड़दंग देखकर बोली-क्या मुआमला है? तुम लोग क्यों इस भले आदमी को दिक कर रहे हो?

अमरकान्त की जान में जान आयी। उसके पास जाकर फरियाद करने लगे-ये

लोग मेरे कपड़े छीनकर भाग गये हैं और उन्हें गायब कर दिया। मैं इसे डाका कहता हूँ, यह चोरी है। इसे मैं न सत्याग्रह कहता हूँ, न देश प्रेम।

युवती ने दिलासा दिया-घबड़ाइए नहीं! आपके कपड़े मिल जाएँगे होंगे तो इन्हीं लोगों के पास! कैसे कपड़े थे?

एक स्वयंसेवक बोला-बहनजी, इन्होंने हाशिम की दूकान से कपड़े लिये हैं।

युवती-किसी की दूकान से लिये हों, तुम्हें उनके हाथ से कपड़ा छीनने का कोई अधिकार नहीं है। आपके कपड़े वापस ला दो। किसके पास हैं?

एक क्षण में अमरकान्त की साड़ी जैसे हाथोंहाथ गयी थी, वैसे ही हाथोंहाथ वापस आ गयी। जरा देर में भीड़ भी गायब हो गयी। स्वयंसेवक भी चले गये। अमरकान्त ने युवती को धन्यवाद देते हुए कहा-आप इस समय न आयी होतीं तो इन लोगों ने धोती तो गायब कर ही दी थी, शायद मेरी खबर भी लेते।

युवती ने सरल भत्र्सना के भाव से कहा-जन सम्पत्ति का लिहाज सभी को करना पड़ता है; मगर आपने इस दूकान से कपड़े लिये ही क्यों? जब आप देख रहे हैं कि वहाँ हमारे ऊपर कितना अत्याचार हो रहा है, फिर भी आप न माने। जो लोग समझकर भी नहीं समझते, उन्हें कैसे कोई समझाये!

अमरकान्त इस समय लज्जित हो गये और अपने मित्रों में बैठकर वे जो स्वेच्छा के राग अलापा करते थे, वह भूल गये। बोले-मैंने अपने लिए नहीं खरीदे हैं, एक महिला की फ़रमाइश थी; इसलिए मजबूर था।

'उन महिला को आपने समझाया नहीं?'

‘आप समझातीं, तो शायद समझ पातीं, मेरे समझाने से तो न समझीं।’

‘कभी अवसर मिला, तो जरूर समझाने की चेष्टा करूँगी। पुरुषों की नकेल महिलाओं के हाथ में है! आप किस मुहल्ले में रहते हैं?

‘सआदगंज में।’

‘शुभनाम?’

‘अमरकान्त।’

युवती ने तुरन्त जरा-सा घूँघट खींच लिया और सिर झुकाकर संकोच और स्नेह से सने स्वर में बोली-आपकी पत्नी तो आपके घर में नहीं है, उसने फ़रमाइश कैसे की?

अमरकान्त ने चकित होकर पूछा-आप किस मुहल्ले में रहती हैं?

‘घसियारी मण्डी।’

‘आपका नाम सुखदादेवी तो नहीं है?’

‘हो सकता है, इस नाम की कई स्त्रियाँ हैं।’

‘आपके पिता का नाम ज्वालादत्तजी है?’

‘उस नाम के भी कई आदमी हो सकते हैं।’

अमरकान्त ने जेब से दियासलाई निकाली और वहीं सुखदा के सामने उस साड़ी को जला दिया।

सुखदा ने कहा-आप कल आएँगे?

अमरकान्त ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा-नहीं सुखदा, जब तक इसका प्रायश्चित न कर लूँगा, न आऊँगा।

सुखदा कुछ और कहने जा रही थी कि अमरकान्त तेजी से कदम बढ़ाकर दूसरी तरफ चले गये।

३

आज होली है; मगर आजादी के मतवालों के लिए न होली है न बसन्त। हाशिम की दूकान पर आज भी पिकेटिंग हो रही है, और तमाशाई आज भी जमा हैं। आज के स्वयंसेवकों में अमरकान्त भी खड़े पिकेटिंग कर रहे हैं। उनकी देह पर खद्दर का कुरता है और खद्दर की धोती। हाथ में तिरंगा झण्डा लिये हैं।

एक स्वयंसेवक ने कहा-पानीदारों को यों बात लगती है। कल तुम क्या थे, आज क्या हो! सुखदा देवी न आ जातीं, तो बड़ी मुश्किल होती।

अमर ने कहा-मैं उनके लिए तुम लोगों को धन्यवाद देता हूँ। नहीं मैं आज यहाँ न होता।

'आज तुम्हें न आना चाहिए था। सुखदा बहन तो कहती थीं, मैं आज उन्हें न जाने दूँगी।'

'कल के अपमान के बाद अब मैं उन्हें मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ। जब वह रमणी होकर इतना कर सकती हैं, तो हम तो हर तरह के कष्ट उठाने के लिए बने ही हैं। खासकर जब बाल-बच्चों का भार सिर पर नहीं है।'

उसी वक्त पुलिस की लारी आयी, एक सब इंस्पेक्टर उतरा और स्वयंसेवकों के पास आकर बोला-मैं तुम लोगों को गिरफ्तार करता हूँ।

'वन्दे मातरम् ' की ध्वनि हुई। तमाशाइयों में कुछ हलचल हुई। लोग दो-दो कदम और आगे बढ़ आये। स्वयंसेवकों ने दर्शकों को प्रणाम किया और मुस्कराते हुए लारी में जा बैठे। अमरकान्त सबसे आगे थे। लारी चलना ही चाहती थी, कि सुखदा किसी तरफ से दौड़ी हुई आ गयी। उसके हाथ में एक पुष्पमाला थी, लारी का द्वार खुला था। उसने ऊपर चढक़र वह अमरकान्त के गले में डाल दी। आँखों से स्नेह और गर्व की दो बूँदें टपक पड़ीं। लारी चली गयी। यही होली थी, यही होली का आनन्द-मिलन था।

उसी वक्त सुखदा दूकान पर खड़ी होकर बोली-विलायती कपड़े खरीदना और पहनना देशद्रोह है!

लेखक परिचय

प्रेमचन्द का जन्म ३१ जुलाई सन् १८८० को बनारस शहर से चार मील दूर समही गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम अजायब राय था। वह डाकखाने में मामूली नौकर के तौर पर काम करते थे। आपके पिता ने केवल १५ साल की आयू में आपका विवाह करा दिया। विवाह के एक साल बाद ही पिताजी का देहान्त हो गया। अपनी गरीबी से लड़ते हुए प्रेमचन्द ने अपनी पढ़ाई मैट्रिक तक पहुंचाई। जीवन के आरंभ में आप अपने गाँव से दूर बनारस पढ़ने के लिए नंगे पाँव जाया करते थे। तेरह वर्ष की उम्र में से ही प्रेमचन्द ने लिखना आरंभ कर दिया था। शुरु में आपने कुछ नाटक लिखे फिर बाद में उर्दू में उपन्यास लिखना आरंभ किया। इस तरह आपका साहित्यिक सफर शुरु हुआ जो मरते दम तक साथ - साथ रहा। सन् १९३६ ई० में प्रेमचन्द बीमार रहने लगे। अपने इस बीमार काल में ही आपने "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना में सहयोग दिया। आर्थिक कष्टों तथा इलाज ठीक से न कराये जाने के कारण ८ अक्टूबर १९३६ में आपका देहान्त हो गया। और इस तरह वह दीप सदा के लिए बुझ गया जिसने अपनी जीवन की बत्ती को कण-कण जलाकर भारतीयों का पथ आलोकित किया।

Holi Ka Uphar

Copyright © 2014 by Sai ePublications

Digital edition produced & published by
Sai ePublications